IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

वाचिक परम्परा में 'बनाफरी पहेलियों ' का विष्लेषणात्मक अध्ययन

ज्योति

पी–एच.डी. शोधार्थी (हिन्दी विभाग)

हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केन्द्र

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विष्वविद्यालय, छतरपुर(म.प्र.)

शोध–निर्देषक : डॉ. कुंजीलाल पटेल

सह प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)

हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केन्द्र

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विष्वविद्यालय, छतरपुर(म.प्र.)

षोध सारांष –

बनाफरी लोकसाहित्य पर अपने व्याख्यान में 'डॉ. कुंजीलाल पटेल' का मानना है कि चंदेलकालीन मध्यभारत में जहां–जहां तक भौगोलिक, प्राकृतिक, राजनैतिक, प्राषासनिक, सामाजिक क्षेत्र में चंदेलों की राजसत्ता का प्रभुत्व था, वहां–वहां तक बनाफरी बोली का साहित्यिक, लोकसाहित्यिक एवं भाषायी स्वरुप देखने को मिलता है। वह सम्पूर्ण क्षेत्र जहां तक बनाफरी बोली आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग की जाती है, उसे बनाफरी क्षेत्र माना जाता है।

बनाफरी का अपना समृद्ध वाचिक लोकसाहित्य है। बनाफरी लोकसाहित्य में लोकगीतों, लोककथाओं, कहावतों की भांति पहेलियों का भी असीमित भण्डार है। बनाफरी क्षेत्र पहेलियों या किस्साओं से हमेषा समृद्ध रहा है। बनाफरी में इन्हें अटका या किस्सा भी कहा जाता है। पहेलियों का प्रचलन प्राचीन से ही चला आ रहा है। इनकी विषयवस्तु में वैदिक, पौराणिक, प्राकृतिक तथा लोकजीवन के प्रसंग प्रचुर मात्रा में देखने व सुनने को मिलते हैं। बनाफरी पहेलियां गूढ़ रहस्य से परिपूर्ण होती हैं, जो लोकमानस के ज्ञानवर्धक की आधार मानी जा सकती हैं।

वाचिक लोकसाहित्य के साथ बनाफरी पहेलियों की अविरल धारा सदियों से शायद इसलिये प्रवाहित होती रही हैं, क्योंकि बनाफरी पहेलियां धार्मिक, पौराणिक, प्रकृति तथा दैनिक दिनचर्या से जुड़ी होती हैं। जिनको सीखने के लिए ग्रामीण जनमानस को विषेष षिक्षण–प्रषिक्षण की आवष्यकता नहीं होती। घरों के बड़े–बुजुर्ग पहेलियों का जो लोकसाहित्य अपने पूर्वजों से सीखते हैं, उन्हें वह अपनी आने वाली पीढ़ियों को वाचिक परम्परा के माध्यम से हस्तान्तरित करते हैं। ग्रामीण जनमानस अषिक्षित होते हुये भी कितना ज्ञान रखते हैं, इनका अंदाजा चौपालों में होने वाली किस्सा, अटका या पहेली से लगाया जा सकता है।

बनाफरी लोकसाहित्य में पहेलियों का मनोरंजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । पहेलियों की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है जो हमें सर्वप्रथम वेदों से देखने को मिलती है। मुख्यतः ऋग्वेद इनका भण्डार है। इसी कारण ऋग्वेद को पहेलियों का वेद भी कहा गया है। वेदों में पहेलियों को ब्रह्मोदय, संस्कृत में प्रहेलिका हिन्दी में पहेली, अंग्रेजी में रिडिल, बुन्देली में बुझौवल या जनौवल तथा बनाफरी में अटका या किस्सा कहा जाता है। कवि केषवदास पहेली के लक्षण के विषय में लिखते हैं –

बारनिय वस्तु दुराय जऊँ, कौनहुँ एक प्रकार।

तासौं कहत प्रहेलिका, कुल बुद्धि उदार।।

अर्थात् किसी भी एक प्रकार से वर्ण्य, वस्तु अथवा अभीष्ट अर्थ को गोपन रखकर जो वर्णन किया जाता है कवि, उसे प्रहेलिका कहते हैं।

पहेलियां सामान्य ज्ञान का सर्वोत्तम माध्यम होती है। इतिहास, भूगोल, ज्ञान–विज्ञान, धर्म–आध्यात्म, सामाजिक संबंध, पषु–पक्षी, इत्यादि सभी विषयों पर पहेलियां रची व बुझी–बुझाई जाती है, इसलिये इनसे सभी विषयों का ज्ञान आदान–प्रदान किया जा सकता है।

मूल शब्द – वाचिक परम्परा, बनाफरी पहेली।

प्रस्तावना –

पहेली शब्द उतना ही पुराना है जितना कि मानव इतिहास। मनुष्य में जब बुद्धि–चेतना का विकास हुआ तभी से वह अपनी बातों को रहस्यमय ढंग से कहने के लिए इनका प्रयोग कर रहा है। वेदों में इसे ब्रह्मोदय कहा जाता था। 'विक्रमादित्य मिश्र' ने पहेली के शब्द के विषय में लिखा है कि "संस्कृत में पहेली को प्रहेलिका कहते हैं। प्र–हिल् अभिप्राय सूचने क्तुम् टापि अतद्वत्वम् अर्थात् प्र–उपसर्गपूर्वक अभिप्राय सूचनार्थक हिल् धातु से क्तुम् प्रत्यय के योग होने पर, स्त्रीवाची 'प्रहेलिका' शब्द बना हैं । इसी से हिन्दी में 'पहेली' षब्द निष्पन्न हुआ है।"[1]

पहेलियों का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया? या इसके रचनाकार कौन हैं? यह एक शोध का विषय है, परन्तु इसकी उत्पत्ति के विषय में 'डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय' का मानना है कि "मानव प्रवृत्ति रहस्यात्मक है। जब मनुष्य यह चाहता है कि उसके कथन को सर्व साधारण न समझ सकें तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है। जो जन–साधारण की समझ से परे होती है। यही पहेली का रुप धारण कर लेती है। मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति ही पहेलियों की उत्पत्ति का कारण है। डॉ. फ्रेजर ने लिखा है कि पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी।"[2]

अनेक विद्वानों ने पहेलियों को परिभाषित किया है। किसी ने इन्हें शब्द चित्रावली तो किसी ने ज्ञानवर्धक का आधार बताया है।इसी संदर्भ में 'डॉ. सत्येंद्र ने पहेलियों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "पहेलियाँ एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाले उपमानों से निर्मित शब्द चित्रावली है, जिसमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है, पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपमानों, के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है वह अस्पष्ट होता है,उससे अभिप्रेत वस्तु का अधूरा संकेत मिलता है पर वह संकेत इतना निष्चित होता है कि यथासंभव उससे किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं हो सकता ।"[3]

इसी प्रकार 'डॉ. कुंजीलाल पटेल' ने पहेलियों को परिभाषित करते हुये कहा है कि "पहेलियों की विषयवस्तु में वैदिक, पौराणिक, प्राकृतिक, तथा लोकजीवन के प्रसंग प्रचुर मात्रा मे देखने व सुनने को मिलते हैं। पहेलियां ज्ञानवर्धक तथा स्मरण शक्ति बढ़ाने के उद्देष्य से कही और सीखी जाती है। इस संबंध में कहा भी जाता है–

अबुझ बुझौआ गाँव के, ज्ञान गठरियन देत।

मौका पै करलो कछु, चेत सकौ तौ चेत।।

ग्रामीण लोग उलझे बुझौवलों को सुलझायें, इनसे ज्ञान की गठरियाँ खुलते, मौका मिलते ही इनका ज्ञान प्राप्त कर लें, अचेतन मन में चेतना प्रस्फुटित करने के लिए अज्ञात को ज्ञात करने के लिए अथाइयों में पहेलियाँ कही जाती हैं।"[4]

पहेलियों की रचना शैली एवं अलंकारों के प्रयोग में विद्वानों का मानना है कि "पहेलियाँ प्रायः व्यंजना शैली में रची जाती हैं। इनकी भाषा में विषिष्ट भंगिमा होती है, रचना में बांकपन होता है, इसकारण इनका अर्थ लगाने में दिमागी कसरत तो होती ही है, भाषा भी मंजती है और विषय–वस्तु के प्रति जिज्ञासा और हाजिर–जवाबी भी बढ़ती है।"[5]

इसी संदर्भ में 'विक्रमादित्य मिश्र' ने पहेलियों को अलंकारों के माध्यम से परिभाषित किया है कि "विभिन्न रुपकों, श्लेषों, तथा अन्योक्तियों द्वारा थोड़े शब्दों में अभीष्टार्थ गोपन की सूत्रात्मक एवं रोचक शैली को पहेली कहते हैं। इसमें एक विचित्र अर्थगर्भता रहती है और प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की व्यंजना का प्रयास किया जाता है। इसमें कुछ ऐसे सूत्र अथवा रुपक निहित रहते हैं जिनके सहारे अप्रस्तुत तक पहुँचने में सहायता मिलती है।"[6]

पहेलियां बौद्धिक विकास की आधार मानी जाती है तथा ग्रामीण जनमानस के मनोरंजन का साधन होती हैं। यह वाचिक परम्परा के द्वारा सदियों से जीवंत है। इसी संदर्भ में 'डॉ. उर्बादत्त उपाध्याय' ने लिखा है कि "परस्पर मानसिक स्तर तथा बौद्धिक विकास को परखने के लिए पहेलियाँ पूछने की लम्बी परम्परा रही है। अतः मौखिक साहित्य में इनका निजी स्थान है, ये मनोरंजन का बहुत बड़ा साधन है। पहेली में किसी साधारण बात को इस ढंग से पूछा जाता है कि श्रोता के मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है और वह गणित के प्रष्न की तरह उत्तर ढूँढने की चेष्टा में खो जाता है।"[7]

इसी संदर्भ में 'डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय' ने माना है कि पहेलियों की उत्पत्ति बुद्धि परीक्षा के लिए की गई होगी, "पहेलियाँ वाग्विलास की वस्तु है बुद्धि परीक्षा के अन्यतम साधन है। जिसप्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रष्नों द्वारा किसी बालक की बुद्धि का माप करते हैं। उसीप्रकार से प्राचीन काल में मनुष्यों की बुद्धि परीक्षा के लिए इनकी रचना की गई होगी। इन पहेलियों के द्वारा बुद्धि का व्यायाम भले ही होता है, उनसे थोड़ी देर के लिए किसी का मनोरंजन भले ही हो जाता है परन्तु इनसे रस की निष्पत्ति नहीं होती। अतः काव्य की दृष्टि से इनका विषेष महत्व नहीं है।"[8]

'डॉ. ज्योत्स्ना श्रीवास्तव' अपने शोधपत्र में पहेलियों के महत्व पर लिखती हैं कि " पहेलियों का काव्य की दृष्टि से विषेष महत्व नहीं है। उत्तम काव्य न सही, पहेलियां अधम काव्य से आनन्दवर्ध्दक की 'काव्यानुकृति' के अन्तर्गत तो अवष्य आएंगी। हयूडसन के अनुसार सामान्य रूचि के आधार पर ठहरा ज्ञान अपनी प्रतिपादन शैली से भी साहित्य के अन्तर्गत आ जाता है।"[9]

बनाफरी लोकसाहित्य में पहेलियों का अथाह सागर भरा हुआ हैं, उन्हीं में से कुछ बनाफरी पहेलियों का संकलन किया गया है। अधिकांष ग्रामीण जनमानस खेती–बाड़ी में संलग्न रहते हैं इसप्रकार स्वाभाविक है कि खेती–बाड़ी से संबंधित बनाफरी पहेलियां ग्रामीण जनमानस में प्रचलित होती हैं। इससे संबंधित कुछ बनाफरी पहेलियां निम्न प्रकार हैं –

'अइंचा डग गइंचा

तीन मूड़ दस गुआड़'

(उत्तर– हरबैल और किंसान)

उक्त पहेली में खेत में हल चलाते हुए किसान के विषय में है। सभी के अर्थात् किसान और बैल के कुल मिलाकर तीन सिर और दस पैर हो जाते हैं।

जनमानस में घरेलू वस्तुओं से संबंधित पहेलियों की प्रधानता रहती है। घर में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न वस्तुओं जैसे दीपक, ताला, लाठी, खप्पर, तराजू इत्यादि के संबंध में पहेलियां बनी होती है। कुछ बनाफरी पहेलियां नीचे दृष्टव्य हैं–

'बाबा स्वाबै या घर मा
पांव पसारै वा घर मा'

(उत्तर– दीपक)

उक्त पहेली में दीपक के प्रकाष का वर्णन किया गया है, क्योंकि जब उसको जलाते हैं तो वह जिस घर में रखा होता है उसमें तो उजेला करता ही है, साथ ही दूसरे घर में प्रकाष बिखेर देता है।

'हारै जाय पतारै जाय
मार कै गूलर टागे जाय'

(उत्तर– ताला और चाबी)

उक्त पहेली में ताला–चाबी का वर्णन किया गया है, क्योंकि जब भी कोई घर से बाहर जाता है तो घर के दरवाजे में ताला लगा के जाता है।

'एक गांव के अइसी रीत
एक उल्टा एक सीध'
(उत्तर– खप्पर)

उक्त पहेली में खपरा अर्थात् खप्पर की छबाई का वर्णन है, क्योंकि खप्पर की छबाई में एक उल्टा एक सीध रखा जाता है।

'गेर गांव फिर आयों
पइसा भर मा धर गयों'
(उत्तर–लाठी)

उक्त पहेली में लाठी का वर्णन किया गया है, क्योंकि इसको लेकर लोग पूरे गांव में घूम आते हैं। और थोड़ी सी जगह पर रख जाती है।

'नथो बुकरा घर घर फिरै'
(उत्तर–तराजू)

उक्त पहेली में तराजू का वर्णन किया गया हैं, क्योंकि तराजू के पल्ले तीन जगह से बधे रहते है और घर–घर में लोग इसका प्रयोग करते है।

'खोल लई निकार लई
बंद करकै मार लई'
(उत्तर–माचिस)

उक्त पहेली में माचिस का वर्णन किया गया है, क्योंकि माचिस की तीली को खोल के निकाला जाता है फिर बंद करके खिरचाई जाती है।

'चार खेत का चहला महला, नौ बिसुआ का खेत
पाँच सौ हरवाहे लागैं, सइला लागै एक'
(उत्तर–पेन और कॉपी)

उक्त पहेली में पेन–कॉपी का वर्णन किया गया है, क्योंकि कॉपी चार कोने की होती है और उसकी लम्बाई नौ बिसुआ बताई गई है। पाँच सौ हरवाहे अर्थात् पाँच अगुलियां और एक सइला अर्थात् पेन इसप्रकार, रूपक का अनूठा प्रयोग इस बनाफरी पहेली में देखने को मिलता है।

बनाफरी क्षेत्र में ग्रामीण जनमानस भोज्य–पदार्थो पर अनेक प्रकार की पहेलियां बनाए रहते हैं जो लोकप्रचलित होती है। कुछ बनाफरी पहेलियों का संग्रह निम्न प्रकार है–

'एक पेड़ दम्मदार, बतियां लागीं सौ हजार
गिल्ली आबै भैं भैं जाय, बाड़ा आबै रो रो जाय
आदमी आबै टोर टोर खाय'
(उत्तर– सिंघाड़ा)

उक्त पहेली में सिंघाड़े का वर्णन किया गया है। सिंघाड़े का पेड़ दम्मदार अर्थात् नाजुक होता हैं तथा उसमें अनेक फल लगे होते है जिसे न गिल्ली खा पाती और न सुआ (तोता) खा पाता है जब कि लोग तोड़ के खा जाते हैं।

'द्याखै मा लाल लाल
खायैं मा अरी बऊ'
(उत्तर– मिर्च)

उक्त पहेली में मिरचा अर्थात् मिर्च का वर्णन किया गया है। जो देखने में लाल होती है और खाने में तीखी होती है।

'भरे कुंआ मा कंडा उतराय'

(उत्तर– मक्खन)

उक्त पहेली में नेनू अर्थात् मक्खन का वर्णन किया गया है। लोग जब दही को मथानी से मंथन करते हैं तब मठा के ऊपर मक्खन तैरने लगता है।

'एक परी एक ठाड़
एक नाचत छमाछम'

(उत्तर– रोटी)

ग्रामीण क्षेत्र में चूल्हे में रोटी बनाते समय एक रोटी तबे पर, एक रोटी चूल्हे मे खड़ी होती है और एक रोटी बेलते समय घूमती रहती है।

बनाफरी क्षेत्र में जीव–जन्तुओं, पषु–पक्षियों की शारीरिक बनावट, रंग, रूप इत्यादि पर रहस्यात्मक ढंग से पहेलियां बूझी जाती है। इन पर आधारित कुछ बनाफरी पहेलियां निम्न प्रकार है–

'नील गरदन तौ लिलौर न होय
चार पांव तौ डोर न होय
लम्बी पूछ तौ बंदरा न होय'

(उत्तर– गिरधान)

अर्थात् लम्बी गर्दन होते हुए वह मोर नहीं, चार पैर होते हुए वह जानवर नहीं और लम्बी पूँछ होते हुए भी बंदर नहीं। अतः इस पहेली का उत्तर गिरधान है।

'एक जानवर अइसा
ज्याखै पूछ मा पइसा'

(उत्तर– मोर)

उक्त पहेली में मोर का वर्णन किया गया है, क्योंकि इसके पूँछ अर्थात् पंखो में पैसे अर्थात् सिक्के के समान आकृति बनी होती है।

'ठाड़ है तौ ठाड़ है
बइठ है तो ठाड़ है'

(उत्तर– जानवर के सींग)

उक्त पहेली में जानवर के सींग के विषय में कहा गया है कि, यदि जानवर खड़ा है तो उसके सींग खड़े रहते हैं और यदि वह बैठ जाता है तो भी उसके सींग खड़े रहते हैं।

आदिकाल से ही मनुष्य प्रकृति के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक रहा है और उससे संबंधित अनेक प्रकार की लोकप्रचलित पहेलियां बनी हुई है। बनाफरी क्षेत्र में भी इस प्रकार की पहेलियां बुझी जाती है जो लोगों के ज्ञानवर्धन की आधार भी बनती हैं–

'लोहे का पेड़, चांदी का काटा
सोने का फूल, हरियर पाता'

(उत्तर– बबूल का पेड़)

उक्त पहेली में एक पेड़ का वर्णन किया गया है जो लोहे की तरह मजबूत, चांदी के रंग का कांटा, सुनहरे रंग का फूल और हरे पत्ते होते हैं।

'एक ईट लाखों कुंआ, घाट घाट पनहार
मोर किहानी बता दे, फिर जेव जिवनार'

(उत्तर– मधुमक्खी का छत्ता)

उक्त पहेली में मधुमक्खी के छत्ते के विषय में वर्णन किया गया है, क्योंकि यह एक ईट के समान होता है और उसमें लाखों अर्थात् छेद होते है और प्रत्येक छेद में एक पनिहारिन अर्थात् मधुमक्खी बैठी होती है।

षारीरिक अंगो के संबंध में हजारों पहेलियां बूझी जाती है। इसीप्रकार बनाफरी क्षेत्र में षारीरिक अंगों पर कुछ लोकप्रचलित बनाफरी पहेलियां है जो निम्न प्रकार है

'अरवा मा गुलरिया नाचै'

(उत्तर–जीभ)

उक्त पहेली में जीभ का वर्णन किया गया है, क्योंकि यह मुंह के अंदर चारो ओर घूमती रहती है

'टेड़ी मेड़ी रास्ता
बीच मा कुंआ'

(उत्तर–कान)

उक्त पहेली में कान के विषय में कहा गया है। कान की संरचना टेड़ी–मेड़ी होती है।

धर्म,वेद पुराण में प्रचलित प्रसिद्ध प्रसंगों पर रहस्यात्मक ढंग से पहेलियां रची गई है। जिनका उत्तर निकालना बहुत मुष्किल होता है, क्योंकि इसप्रकार की पहेलियों में थोड़े से संकेत देकर पूरा प्रसंग प्रस्तुत करना पड़ता है। तब कहीं जाकर उस पहेली का स्पष्ट उत्तर मिलता है। इसप्रकार की कुछ बनाफरी पहेलियां निम्न प्रकार है–

'छः पग चलै, चार लटकाए
तीन मूड़, छः नयन कहलाए'

(उत्तर– हनुमान के कंधे पर बैठे राम और लक्ष्मण)

जब हनुमान, राम और लक्ष्मन को अपने कंधे में बैठाकर किष्किंधा ले जा रहे थे। हनुमान अपने दोनों पैरो से रहे थे। चूंकि राम और लक्ष्मन हनुमान के कंधे पर अपने दोनो पैरों को लटकाए हुये बैठे थे। राम, लक्ष्मन तथा हनुमान के तीन सिर हो गए एवं तीनों की दो–दो आंखे मिलाकर छः नयन कहलाए।

'दुइ गे डेढ़ आए
बिड़ी मगाई बंडल लाए'

(उत्तर– संजीवनी बूटी)

जब हनुमान संजीवनी बूटी लेने के लिए गए थे। भरत के द्वारा उनके पैर पर तीर लगने के कारण अपना एक पैर जमीन पर नहीं रख पा रहे थे जिससे कहा जाता है कि दुइ गे डेढ़ आए। उनसे संजीवनी बूटी लाने के लिए कहा गया था, लेकिन वे पहाड़ ही उठाकर ले आए।

इन उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त कुछ ऐसी स्वतंत्र पहेलियां होती है जिनका कोई निष्चित क्षेत्र नहीं होता । जो इसप्रकार हैं–

'उठत है कि टिटुआ दाबौं'

(उत्तर– लोटा)

'फरै न फूलै डलियन टूटै'

(उत्तर– राख)

'भाई भाई भट्ट उड़े'

(उत्तर– दरवाजा)

'या आई वा गै'

(उत्तर– नजर)

निष्कर्ष –

बनाफरी पहेलियों की उपर्युक्त विवेचना से स्वतः स्पष्ट हो जाता हैं कि पहेलियों की सृजनषीलता ने अभी विश्राम नहीं किया है। आज भी इन पर ग्रामीण लोकमानस अभिरूचि पैदा कर रहा है। लेकिन जो रूचि आज से कुछ दर्षकों पूर्व थी अब वह देखने को नहीं मिलती। वाचिक परम्परा में बनाफरी पहेलियों का लोकसाहित्य धीरे–धीरे विलुप्त हो रहा है। "पहेली लोक साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। लोकगीत, लोक कथा, वीर गीत और लोक नाट्य के समान पहेली भी जीवन और लोक संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है। पहेली मौखिक वाड़मय विधा है जो सदियों से जनता की स्मृति एवं जिव्हा पर जीवित रहती आयी है। किसी देष या प्रान्त को जनता के आचार–विचार, रीति–रिवाज, खान–पान और वेष–भूषा के साथ उनकी जीवन–दृष्टि, बौद्धिक विकास, भावात्मक गरिमा, कल्पना वैभव, मनोरंजन तथा विनोदप्रियता की सच्ची अभिव्यक्ति उनकी भाषा की पहेली में ही पायी जाती है।"[10]

हम बुद्धिजीवियों का लोकधर्म है कि उन्हें संकलित कर संरक्षित करें। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो हम वाचिक परम्परा की इस प्रकीर्ण धरोहर से एक न एक वंचिक रह जायेगें।

संदर्भ ग्रन्थ –

(1) विक्रमादित्य मिश्र, "पहेली–कोष" के 'प्रस्तावना' शीर्षक से, बिहार–राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, संस्करण 1989

(2) डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, 'लोकसाहित्य की भूमिका' साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1957, पृष्ठ सं.159

(3) डॉ. सत्येंद्र, 'लोक साहित्य विज्ञान' राजस्थानी ग्रन्थघर जोधपुर, संस्करण 2017, पृष्ठ सं. 374–375

(4) डॉ. कुंजीलाल पटेल, "विस्मृत बुन्देली भाषा और संस्कृति" के 'बुन्देली पहेलियाँ' शीर्षक, राकेष व्यास 204 वाष्ले मेनर रूस्तम बाग बंगलुरू, कर्नाटक, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ सं. 94

(5) सुरेष, 'पहेलियाँ ही पहेलियाँ', रूपेष ठाकुर प्रसाद प्रकाषन, वाराणसी , संस्करण 2013, पृष्ठ सं. 7

(6) विक्रमादित्य मिश्र, "पहेली–कोष" के 'प्रस्तावना' शीर्षक से बिहार–राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, संस्करण 1989

(7) डॉ. उर्बादत्त उपाध्याय, 'कुमाउनी की लोकगाथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन', पृष्ठ सं. 63–64

(8) डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, 'लोकसाहित्य की भूमिका' साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1957, पृष्ठ सं.164

(9) डॉ. ज्योत्स्ना श्रीवास्तव, ' लोक परम्परा एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक थाती : हाड़ौती अंचल', AIJRA VOL. III ISSUE I, 2018 ISSN 2455-5967

(10) प्रिया जी. एवं के.जी. प्रभाकरन, 'भारतीय साहित्य में हिन्दी एवं मलयालम भाषा में पहेलियों का महत्व', ADVANCE RESEARCH JOURNAL OF SOCIAL SCIENCE, DECEMBER, 2011, Volume 2, Issue 2, 283-285